

\* श्रीश्रीगुहाराज्ञी जयतः \*

स वे पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वतुहितः पूर्णा विवरकसेन कथासु यः ।



\* अहैतुक्यप्रतिहता पवात्मासुप्रसीदति । \*

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का थेषु रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
भक्ति अधोक्षज को अहैतुकी विद्वनशून्य प्रति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो अमव्ययं सभी के बल बंचनकर ।

वर्ष १३ } गौराब्द ४८१, मास—नारायण २६, वार—वासुदेव { संख्या ८  
{ रविवार, २६ पौष, सम्वत् २०२४, १४ जनवरी, १९६८

## श्रीश्रीग्रन्थयुवराजाष्टकम्

( श्रीलहृप गोस्वामी विरचितम् )

श्रीश्रीत्रजनवयुवराजाय नमः ॥

मुदिरमदमुदारं मर्दयन्नज्ञकान्त्या  
वसनहच्चनिरस्ताम्भोजकिञ्चलकशोभः ।  
तद्दणिमतरणीक्षाविकलवद्वाल्यचन्द्रो  
त्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥१॥

जो अपनी अज्ञकान्तिद्वारा नवीन मेघके मदगर्वका मर्दन कर रहे हैं, जो अपनी वसनकान्तिद्वारा कमलके केशरकी शोभाका तिरस्कार कर रहे हैं, और जिनके नवयीवनहृप सूर्यका दर्शन कर बाल्यावस्थारूप चन्द्रकी कान्ति क्षीण हो रही है, ऐसे वे त्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी वांछाको पूर्ण करें ॥१॥

पितुरनिशमगच्छप्राणनिमंज्ञनीयः  
कलिततनुरिवादा मातृवात्सल्यपुञ्जः ।  
अनुगुणगुरुगोष्ठी-हृषिपीयृष्टवर्त्ति-  
व्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥२॥

पिता नन्द महाराज प्रतिदिन जिनका यथाशक्ति निर्मञ्जन करते हैं, जनना यशोदाके निकट जो साक्षात् मूर्तिमान् वात्सल्य--रस--स्वरूप हैं, और पिता-माताकी तरह माननीय गुरुजनोंकी हृषिमें जो अमृत शलाकास्वरूप हैं, ऐसे वे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी बांध्याको पूर्ण करें ॥२॥

भखिलजगति जाग्रन्मुग्धवैदर्थ्य चर्या-  
प्रथमगुरुरुदग्रस्थाम--विश्रामसोधः ।  
अनुपमगुणराजीरञ्जिताशेषबन्धु-  
व्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥३॥

अति मनोहर नृत्यगीतादि चौसठ कलाएँ, जो सभी पृथ्वीमें वर्तमान हैं, उन सभीके जो प्रथम गुरुस्वरूप हैं, जो अत्यन्त श्रेष्ठ पराक्रमके सुखमय विश्रामस्थान हैं और जो अपने अनुपम गुणराशिद्वारा अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंका मनोरंजन कर रहे हैं ऐसे वे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी बांध्याको पूर्ण करें ॥३॥

अपि मदनपराद्वैदुष्करं विकियोमि  
युवतिषु निदधानो भ्रूधनुदूर्ननेन ।  
प्रिय सहचरवर्गं प्राणमीनाम्बुराशि  
व्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥४॥

पराद्वपरिमित कन्दर्प ( कामदेव ) के लिए भी असाध्य भ्रूरूपी धनुद्वारा हृषिरूपी वाणिका सन्धान कर जो युवतियोंके हृदयमें विकार तरङ्गोंका विस्तार कर रहे हैं और जो प्रियसहचरवर्गके प्राणमीनके लिए समुद्र-स्वरूप हैं, ऐसे वे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी बांध्याको पूर्ण करें ॥४॥

नयनशृणिविनोदक्षोभितानञ्जनागो-  
न्मधितगहनराधाचित्तकासारगर्भः ।

प्रणयरसमरन्दास्वादलीला-षडंगि-  
व्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥५॥

जो कटाक्षभद्रङ् शपात द्वारा क्षुब्ध प्रनङ्ग हस्तिके द्वारा शारांघकाके दुरवाह  
( अत्यन्त गहरे ) चित्त सरोवरको आलोड़ित कर रहे हैं और जो श्रीराधिकाके प्रणय-  
रसपानमें भ्रगरस्वरूप हैं, ऐसे वे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी बांध्याको पूर्ण करें ॥५॥

अनुपदमुदयन्त्या राधिकासंगसिद्धया  
स्थगित-पृथुरथांग-द्वन्द्वरागानुबन्धः ।  
मधुरिम-मधुधारा-धोरणीनामुदन्वान्  
व्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥६॥

अतएव जो निशाविरही चक्रवाक्युगलके परस्पर निबद्ध उत्कृष्ट प्रेमका भी  
तिरस्कार कर रहे हैं अर्थात् वे रात्रिमें परस्पर विरहित रहनेके कारण इच्छामात्र ही  
से मिलित नहीं हो सकते, किन्तु ये ( राधा और कृष्ण ) सर्वदा ही युगलभावसे अव-  
स्थान करते हैं और जो माधुर्यरूप मधु-प्रवाहके समुद्र-स्वरूप हैं, ऐसे वे व्रजनवयुवराज  
श्रीकृष्ण मेरी बांध्याको पूर्ण करें ॥६॥

अलधुकुटिलराधा--हृषिवारि-निरुद्ध-  
त्रिजगदपरतन्त्रोददामचेतोगजेन्द्रः ।  
सुखमुखरविशाखानर्मणा-स्मेरवक्त्रो  
व्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥७॥

त्रिजगतमें कोई भी जिनको बन्धनमें डाल नहीं सकता, ऐसा अतिप्रबल जिनका  
चित्तहस्ती श्रीराधिकाजीके कुटिल कटाक्षरूप वारि ( गजबन्धन शृङ्गल ) द्वारा बन्धन  
में आ गया है, एवं जो नर्म-वाक्यालापमें अत्यन्त चतुरा श्रीविशाखाके परिहास वाक्य  
को श्रवण कर मन्द-मन्द हास्य प्रकाश करते हैं, ऐसे वे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी  
बांध्याको पूर्ण करें ॥७॥

त्वयि रहसि विलन्त्यां सम्भ्रम-न्यासमुखा-  
पुष्पसि सखि तवाली--मेलला पश्य भाति ।

इति विवृतरहस्यं हौ पयन्नेव राघां  
ब्रजनवयुवराजः कांक्षितं मे कृषीष्ट ॥८॥

हे विशाख ! हे सखि ! तुमने निर्जनमें जो गूँथकर अपनी सखी श्रीराधिकाको पहनाया था, अभी वे मेथके ऊपर बिजलीकी तरह मेरे ऊपर दीरात्म्य प्रकाश करनेके कारण उम्होने उस कांची ( चत्त्रहार ) को तोड़कर फेंक दिया है, इस प्रकारके रहस्य-कृत चरित्रको प्रकाश कर जो प्रातःकालमें श्रीराधिकाको लजिज्ञत कर रहे हैं, ऐसे वे ब्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण मेरी वांछाको पूर्ण करें ॥८॥

ब्रजनवयुवराजस्याष्टकं तुष्टुदिः  
कलितवरविलासं याः प्रयत्नादधीते ।  
परिजनगणनायां नाम तस्यानुरज्यन्  
विलिखति किल वृन्दारण्यकाजीरसजः ॥९॥

जो व्यक्ति प्रसन्नचित्तसे यत्नपूर्वक अनुरागी होकर ब्रजनवयुवराज श्रीकृष्णके विलासपूर्ण इस पद्माष्टकका पाठ करते हैं, वृन्दावनराजी श्रीराधिकाके प्रणाय-रसज श्रीकृष्ण अपने परिजनोंमें उसकी गणना कर उसका नाम उल्लेख करते हैं ॥९॥

## नर-जीवन का कर्तव्य

नर-देही पाइ चित्त चरन-कमल दीजै ।  
दीन वचन, संतनि-सङ्ग दरस-परस कीजै ॥  
लीला-गुन अमृत-रस स्वननि-पुट नीजै ।  
सुन्दर मुख निरखि, ध्यान नैन मांहि लीजै ॥  
गदगद सुर, पुलक रोम अंग-अंग भीजै ।  
सूरदास गिरिधर-जस, गाइ-गाइ जीजै ॥

## श्रीकृष्णाविर्भाव

मूर्कं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।  
यत्कृपा तमहं बन्दे परमानन्द माघवम् ॥  
अचिन्त्य व्यक्तकृपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।  
समस्त जगदाधार-मूर्त्ये ब्रह्मणे नमः ।

बहुतसे व्यक्ति भगवद्वस्तुको खण्डित जड़-वस्तुकी तरह प्राकृत चिन्ताधीन समझते हैं; परन्तु बात ऐसी नहीं है। भगवद्वस्तु अचिन्त्य है। वे केवल अचिन्त्य नहीं हैं—सेवोन्मुख व्यक्तिके चिन्ताधीन चिन्मय वस्तु हैं। वे अव्यक्त ( अप्रकाशित ) हैं। किन्तु उनका रूप है। रूप दर्शनेन्द्रियका ग्राहा वस्तु है। जिनका रूप नहीं है, वे अव्यक्त हैं। जिनका रूप है, वे व्यक्त हैं। भगवद्वस्तुमें ही परस्पर चिरुद्ध भाव-समूहों का समन्वय होता है। यह भाव भी अचिन्त्य है। भगवान निर्गुण वस्तु है। सगुणा वस्तुकी ही उपलब्धि होती है। जो सगुण नहीं है, इन्द्रियोद्वारा उसकी उपलब्धि नहीं होती। गुणात्मके अतीत वस्तु या निर्गुण होकर भी वे गुणात्मा हैं—समस्त कल्याणगुणोंके एकमात्र सागर हैं, वे एक ही साथ चिदगुणोंसे गुणी और निर्गुण हैं। उनमें सभी गुण हैं। इन्द्रियज-ज्ञान द्वारा परिचालित इस जड़ जगतको वे धारण किए हुए हैं। वे जगतके आधार-मूर्ति हैं। वे मूर्ति और अमूर्त हैं। जगत उनकी मूर्ति नहीं है, बल्कि जगतके अन्तरमें मूर्तिमान् वे ही हैं। जिस वस्तु की इन्द्रियज्ञानद्वारा उपलब्धि हो, वह भोगकी

वस्तु है। जगत वे नहीं हैं—जगत उनका आधार है। वे ही ब्रह्मवस्तु हैं। उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

अपूर्ण वस्तु पूर्णमें अवस्थित है। हम नमस्कार के विना ( 'न' का अर्थ निषेध है और 'म' का अर्थ अहङ्कार है )—अर्थात् अहङ्कारको छोड़े विना उनके पास जा नहीं सकते। जगतके अनन्त नाम, अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त क्रियाएँ हमारी उपलब्धि के विषय हैं। किन्तु वे ब्रह्मवस्तु हैं—‘ब्रह्मवाद ब्रह्मणत्वाच्च ब्रह्म।’ वे सीमाविशिष्ट कोई वस्तु नहीं हैं, जो उन्हें मापा या भोगा जा सकें। उनके साथ सम्बन्धरहित होकर किसी वस्तुकी स्थिति सम्भव नहीं है। ऐसी जो वस्तु है, वही ब्रह्म है। उसी वस्तुके अन्तर ही सभी वस्तु सम्मिलित हैं। भिन्न-भिन्न वस्तु उनके ही अन्तर्गत वस्तुमात्र हैं।

खण्डज्ञानसे अखण्डज्ञानकी ओर जानेकी भूमिकामें ‘ब्रह्म’ आदि शब्दोंका व्यवहार होता है। हम समझते हैं कि वह पूर्णज्ञानका निर्देशक एक शब्दमात्र है। किन्तु वास्तवमें वह क्या वस्तु है, ‘ब्रह्म शब्द’ से हम यह लक्ष्य नहीं करते। “साद्वित्रिहस्त परिमित नराकार ब्रजेन्दनन्दन हैं” —इस कथनका अर्थ खण्डितभावसे ग्रहण करना अनुचित है। जो सभी वस्तु भगवद्वस्तु या एकमात्र वरणीय नहीं हैं, जिन वस्तुओंके साथ सभी वस्तुओं

का सम्पर्क नहीं है, उन वस्तुओंमें ही हमारा संकीर्ण साम्प्रदायिक भाव उपस्थित होता है। 'अणु और वृहत्,' 'चिन्त्य और अचिन्त्य', 'मिराकार और साकार' आदि शब्दोंका विचार उपस्थित होता है। "सदेव सीम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" ( छा० ६।२।१ )। भगवद्वस्तु निविशिष्ट नहीं हैं या सविशिष्ट होनेके कारण निविशिष्ट भाव उनमें नहीं है, ऐसी भी बात नहीं है। ब्रह्ममें अणुत्व भावाभाव है—ऐसा भी नहीं है। अणुत्वमें अवस्थित होकर वे वृहत्व धारणा नहीं कर सकते—यह बात भी नहीं है। ऐसी क्रियाएँ अचिज्जगतमें असम्भव हैं। अचित्-परमाणुके भीतर वृहत् ब्रह्माण्ड नहीं रह सकता। किन्तु यह अचेतन शास्त्राका चिन्तालोत मात्र है। चेतनता विचारमें यह विचार चेतनताकी पूर्ण उपलब्धिमें बाधास्वरूप है। श्रुतियोंमें कहते हैं—

"बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।  
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कर्षपते ॥"

( इवेताश्वतर ४।६ )

चेतनके अणुमें अनन्तकी सेवा करनेकी योग्यता है। चेतनका गठन ऐसा नहीं है जो 'अणु' होने से वह अनन्तकी सेवा नहीं कर सकता। उदाहरणके लिए—एक आगका विस्फुलिंग आधार प्राप्त करने पर सारे जगतको जलाकर भस्मीभूत कर सकता है।

हम अविद्या अनुभूतियुक्त 'साढ़े तीन हाथ वाले' मनोधर्मयुक्त जीव हैं। हम जिस प्रकार ब्रह्मवस्तुको निर्देश करनेकी चेष्टा करते हैं, कृष्ण वैसे नहीं हैं। भगवत् शब्द द्वारा ऐसे निर्देशके भीतर ही कृष्ण-

विषयको जाननेमें मुविधा होती है। किन्तु 'ब्रह्म' और 'परब्रह्म' शब्दोंके द्वारा मनोधर्मयुक्त हम पूर्ण वस्तुका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते।

'ब्रह्म' और 'परमात्मा' शब्द भगवत् शब्दके अन्तभुत्तक शब्दमात्र हैं। 'कृष्ण' शब्द परम परिपूर्ण वस्तु हैं। उनके ही प्रकाश बलदेव हैं, जिनसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चतुर्व्यूहोंका प्रकाश होता है, जिनसे महावैकुण्ठमें महासंकर्षणका प्रकाश होता है। बलदेवजी इन सभीके मूलवस्तु हैं। बलदेवके मूल-स्वयंरूप कृष्ण हैं या स्वयं भगवान् हैं जिन्हें अन्य शब्दोंसे कहा नहीं जा सकता।

'कृष्णाविभवि' का अर्थ है—प्रत्येक जीव-हृदय में वर्त्तमान शुद्ध-चेतनतामें पूर्ण-चेतनरूप कृष्णका पूर्ण-प्रकाश। वर्त्तमान समयमें हम अचित् विषयोंमें अभिनिविष्ट हैं। यदि हम इस अचिदभावका संकोच कर सकते हैं, तब ही हम सीमायुक्त धर्मसे छुटकारा पा सकते हैं। 'मैं' अचित् शुद्ध पदार्थ नहीं हैं, 'मैं' तो चिन्मय शुद्ध पदार्थ हूँ।

'भगवान् स्वयं अपनी जितनी सेवा कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा मैं अधिक सेवा कर सकूँगा'—यह उपलब्धि उस समय होगी, जब हम वास्तवमें काष्ठण-प्रतीतियुक्त होगे। यदि किसी दिन हम किसी काष्ठण या वैष्णवके निकट पहुँच सकेंगे, तब कहीं जाकर हमें शान्ति मिल सकती है। काष्ठण को साधारण भाषामें 'वैष्णव' कहते हैं।

'प्राभव', 'वंभव', 'विलास', 'अंश', 'कला', 'विकला' आदि शब्दोंद्वारा विष्णुको उद्देश किया गया है। 'कृष्ण' शब्दसे साक्षात् स्वयंरूप कृष्ण

उद्दिष्ट होते हैं। 'कृष्ण' शब्द और कृष्ण दोनों अभेद हैं।

विष्णुकी शक्ति मायाकी किया वत्तमान समय मेरे 'मेरापन' में वत्तमान है। मैं अणुचित हूँ; किन्तु 'मैं अणुचित हूँ', जब ऐसी धारणा करता हूँ, तब मेरी मायाद्वारा आवृत और विक्षिप्त अवस्था में—दुर्बलावस्थामें जिस भावके द्वारा चालित होता है, उसके द्वारा वैष्णवके निकट पहुँचनेमें असमर्थ हूँ। हम मायिक इन्द्रियोंद्वारा वैष्णवोंको छोटा बना देते हैं, हम वैष्णवोंको माप लेना चाहते हैं। अमुक का पुत्र 'वैष्णव' है, अमुकके मामा 'वैष्णव' हैं—ऐसा हम कहा करते हैं। कभी ऐसा भी कह देते हैं कि वैष्णव धर्म नीच लोगोंका धर्म है, अपने को वैष्णव समझना मूर्खता या संकीर्णता है।

कृष्णप्रतीति तो एकदम ही नहीं है, कार्णप्रतीतिके सम्बन्धमें भी हमारी प्रकृष्ट धारणा नहीं है। जहाँ प्रिय व्यक्तियोंको गौणरूपसे विताड़ित किया गया है, वहाँ यही जानना चाहिए कि हम हेतुवादी हैं। सत्यके निकट जानेसे हम सत्यको साक्षात् रूपसे देख पाते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार व्यवधानको दूर कर सूर्य दर्शन किया जाता है। आत्मवस्तुमें ही परमात्मवस्तु दर्शन करनेका सामर्थ्य है। अनुमानके द्वारा हमें सत्यदर्शन नहीं होता। एक देशको मान कर जो सिद्धान्त किया जाता है, उसमें वस्तुके विवर्तमात्रको ग्रहण किया जाता है। वहाँ वस्तुके सत्यत्वका दर्शन न कर उसे अपने उपयोगी दर्शनके द्वारा दर्शन करते हैं। ऐसा करनेसे एक वस्तुमें दूसरे वस्तुका भ्रम हो जाता है।

भगवद्वस्तुमें—चेतनवस्तुमें युगपत् विरुद्धधर्म का अपूर्व समन्वय है। यदि हम विरुद्ध धर्मके एक-देशका दर्शन या विचार कर उसे त्याग देते हैं, तो हम वंचित रह जायेंगे। कृष्णको खण्डित, परिच्छन्न जाननेसे कृष्णकी पूर्णता-विचारकी हानि होती है। बाहरी जगतके विपरीत दर्शनके बलपर केवल मुखद्वारा कृष्णको पूर्ण कहते हुए कृष्णकी नामरूपगुणलीलाको अस्वीकार करना जिस तरह एक प्रकारकी वच्चना है, उसी तरह सहजियाविचारद्वारा कृष्णको हमारी भोगबुद्धिके वशीभूत साढ़े तीन हाथ परिमाणयुक्त एक व्यक्ति विशेष समझना भी एक आत्मवच्चनामात्र है।

परमकरणामय कृष्णचन्द्र उनके परिकरोंके साथ इस प्रपञ्चमें अवतोरण होते हैं—भाग्यहीन जीव ऐसा विचार नहीं कर पाते। "कृष्ण एक जड़वस्तु है, कृष्णको जरा नामक व्याध संहार करनेमें समर्थ है, कर्मफलवाद्य जीव जिस प्रकार विधिवाद्य हैं, उसी प्रकार वे भी हैं।"—ऐसा विचार भाग्यहीन व्यक्तियोंका है। कृष्णद्वारा सभी विधियाँ ही पराजित हैं। उनके ऊपर कोई विधि कार्य नहीं कर सकती। वे सभी विधियोंके विधि हैं। कृष्ण अधोक्षज-वस्तु है अर्थात् वे मनुष्योंके भोग्यवस्तु नहीं हैं, वे कृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं। कृष्णके नेत्र, करण, नासिका, जिह्वा, त्वक् आदि इन्द्रियाँ सारे जगतका दर्शन करती हैं, समस्त शब्दोंका श्रवण करती हैं, समस्त वस्तुओंका ग्राण तथा आस्वादन लेती हैं और सभी वस्तुओंको ही स्पर्श करती हैं।

कृष्णविमुखताके कारण ही हम अपनी वर्त्तमान धारणाद्वारा कृष्णको देख नहीं पाते। कृष्णकी मायाकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ हैं— १) कृष्णको देखने न देना ( २ ) कृष्णको दूर रख देना। इन दोनों वृत्तियोंको एकमात्र काष्ठण ही दूर कर सकते हैं।

कुलीनग्रामवासियोंके प्रश्नोत्तरमें श्रीपन्महाप्रभु-जीने कहा है—कृष्ण-सेवा, काष्ठण-सेवा और नाम-संकीर्तन—ये तीनों ही जीवोंके कर्तव्य हैं। जिस वस्तुकी सेवाकी जाय, वे ही 'सेव्य' हैं। जो 'सेवा' करते हैं, वे ही 'सेवक' हैं। सेवककी वृत्ति ही 'सेवन' या 'भक्ति' है।

भजनीय-वस्तु भगवान्, भजनकारी भक्त, और भजनवृत्ति भक्ति—ये तीनों ही नित्य हैं। ये काल-क्षोम्य नहीं हैं, भूतादियोंकी तरह जन्म-स्थिति-भज्जके अधीन नहीं हैं। भगवानकी सेवाके लिए जब तक विशुद्धा चेष्टा न की जाय, तब तक इसकी उपलब्धि नहीं होती। मिथ्रा या अशुद्धा चेष्टाद्वारा भगवद्वस्तुकी उपलब्धि नहीं होती—

"अतः श्रीकृष्णन् मादि न भवेद्ग्राह्यमिदियः ।  
सेवोन्मुखे हि जिह्वादो स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥"

यदि मैंने आत्माकी नित्या वृत्ति भक्तिका सन्धान न पाया, यदि उसके द्वारा नित्य वस्तुकी सेवान की, तो मैंने सत्यवस्तुका सन्धान नहीं किया—अथेष्यपथका बहुमानन कर केवल नरककी ओर ही धारित हुआ।

वैष्णव निर्बोध हैं, लम्पट हैं, अत्यन्त धृष्ण हैं—ये सभी तथाकथित सत्याभिमानीके विशेषण हैं।

हम जगतके व्यक्तियोंके निकट कपट कर कहते हैं—हम विष्णुके उपासक हैं, कृष्णके दास हैं। किन्तु वास्तवमें हम इन्द्रिय के दास, भोगी, अकर्मी और कुकर्मी हैं। जब तक जीवमें भगवानके प्रति अविमिश्रसेवा-प्रवृत्ति उदित नहीं होती, तब तक उसे थोड़ा भी कृष्ण-ज्ञान नहीं हुआ, यह जानना चाहिए। श्रीगौराङ्गदेवके बचन हमारे हृदयोंमें प्रविष्ट नहीं हुए। जब तक हमें यह उपलब्धि नहीं होती कि कृष्ण और काष्ठण-सेवा ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है, तब तक हम वञ्चित ही रहते हैं। हम अपनी दुबुंद्धिसे कब छुटकारा पा सकेंगे?—जब हम निष्कपट होकर काष्ठणका शरण ग्रहण करें। सूर्य बहुत दूर है, किन्तु तथापि सूर्यकी किरणें निर्बोध रूपसे बहुत दूरसे हमारे निकट पहुंच जातीं हैं। उसी प्रकार भगवान् भी प्रपञ्चमें हमारे निकट आविभूत होते हैं। जो व्यक्ति निरन्तर भगवदुपासना करते हैं, उनके आश्रयमें ही—उनके श्रीहस्त द्वारा उन्मीलित नेत्रोंद्वारा ही भगवददर्शन सम्भव है। यदि नाटकमें वेषधारी नारदको 'भक्तराज नारद समझें, तूना मिले हुए जलको 'दूध' समझें, तो हम वास्तवमें प्रतारित हो जायेंगे। जो व्यक्ति सब समय भगवदभजन करनेकी चेष्टा करते हैं, जो व्यक्ति सब प्रकारसे प्रत्येक पद-पदपर भगवानकी सेवा करते हैं, सर्वस्व देकर भगवानकी सेवाको छोड़कर और कुछ भी नहीं करते, ऐसे किसी पुरुषकी सेवाद्वारा ही हमें शुद्ध कृष्णभजन मिल सकता है। बहुतसे व्यक्ति रहस्यसे भी कहा करते हैं—'अमुक व्यक्ति को कृष्ण प्राप्त हुए हैं।' कृष्णप्राप्ति होनेका तात्पर्य है—इस जगतसे सम्पूर्ण

रूपसे विच्छिन्न हो जाना। कृष्ण ही सभी प्राप्तियों के आखिरी प्राप्ति हैं। संकीर्तनरूपी कृष्ण नितान्त अयोध्य व्यक्तियोंके हृदयोंमें भी अघ, वक, पूतना आदिका ध्वंस करते हैं। कृष्णसेवाको छोड़कर हमारा और कोई कर्त्तव्य नहीं है। श्रीगौरसुन्दरने स्वयं कृष्ण होकर मी काष्ठर्णुके वेशसे नाना प्रकार से—नाना रूपसे—नाना भाषणोंमें एकमात्र कृष्णभजन करनेकी शिक्षा दी है। कृष्णसे जगत उत्पन्न हुआ है, कृष्णमें जगत स्थित है, और कृष्णमें ही जगतका लय होता है। हमारी आवृत अवस्थामें कृष्ण अपना निजत्व नहीं दिखलाते। आखियोंकी पुतलियाँ जब मेघखण्डद्वारा आवृत रहतीं हैं, तब स्वप्रकाश सूर्य विलुप्त नहीं होते, किन्तु वे हमारे हृषिगोचर नहीं होते। कृष्ण दर्शनसे वंचित रहना ही सेवा-विमुख जीवकी योग्यताका तिरस्कार या पुरस्कार है।

मनोधर्म द्वारा चालित—रूपरसगन्धस्पर्शसे आच्छान्न अवस्थामें इन्द्रिय-तर्पणपर व्यक्तियोंको सत्यवस्तु कृष्णकी उपलब्धि नहीं होती। उनके नाम-रूप-गुण-लीलाके कीर्तित होने पर भी हम वे सभी उपलब्धि कर नहीं पाते। कभी अन्यमनस्क रहते हैं, तो कभी हम उन्हें हमारे इन्द्रियप्रीति या भोगकी वस्तु समझकर दूसरे प्रकारसे अन्यमनस्क हो पड़ते हैं।

जीवकी शुद्ध-आत्म-सत्तामें श्रीकृष्णका आविभाव होता है। कृष्ण जिनपर दया करते हैं, वे उनके आविभावकी उपलब्धि करते हैं। दया दो प्रकारकी है—(१) साधनाभिनिवेशज (२) कृष्ण या काष्ठर्णुप्रसादज। कृष्ण ही भक्तकी अपनी सम्पत्ति हैं। भक्त ही कृष्णको दे सकते हैं। कृष्ण सेवोन्मुख व्यक्तिके आत्मवृत्तिमें उदित होते हैं—‘यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः’।

कृष्णके भक्तको द्वार-द्वारमें वितरण करते हैं—वे इतने बदान्य हैं। जिस प्रकार कृपण व्यक्ति दुर्गोत्सव नहीं करते, किन्तु दूसरे व्यक्ति जबर्दस्तो प्रतिमा फेंक जाते हैं, और तब बाध्य होकर प्रतिमाकी पूजा करनो पड़तो है, उसी प्रकार हमारे रत्नविशिष्ट न होने पर भी कृष्णभक्त लोग सभी व्यक्तियोंके द्वार-द्वार पर जाकर साक्षात् कृष्ण—‘श्रीनाम’ का वितरण करते हैं। ठाकुर-पूजाके लिए किसी घरमें ठाकुर रख जानेकी तरह श्रीगौर सुन्दरने सर्वचेतन-वस्तुके अन्वेषनीय वास्तव-वस्तु श्रीनाम सभीके द्वार-द्वार पर वितरण किया है। तृण से भी मुनीच न होनेसे कृष्णनामका उच्चारण नहीं होता। ‘नामसंकीर्तनका अर्थ है—स्थूल और सूक्ष्म शरीरको छोड़कर कृष्णप्राप्ति होना—नारद के “न्यपत पांचभौतिकः” की तरह विदेहमुक्ति, जीवित दशामें मुक्ति या स्वरूप-मुक्ति होना। जब कृष्ण विदेहमुक्ति गदान करते हैं, तब ही वह जाना जाता है कि वे विशेषरूपसे आकर्षण कर रहे हैं। अचित् वस्तुओंके भोगमें व्यस्त रहनेसे उनके आकर्षणकी उपलब्धि नहीं होती। देहमें आत्मबुद्धि ही विवित्तका स्थान है। देहमें आत्म-बुद्धि लेकर हम मायिक तत्त्वको ‘कृष्णतत्त्व’ समझते हैं। कृष्ण मनुष्य हैं, कृष्ण लम्फट हैं, कृष्ण राजनीतिज हैं, कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, कृष्ण हमारी भोगबुद्धिजात धारणाके अनुसार स्वाध्यपरतायुक्त हैं—ये सभी विचार कृष्णविषयमें अभिज्ञताके अभाव और भाग्यहीनताका ही परिचय देते हैं। कृष्ण ही परमपुरुष हैं, कृष्ण ही परम सत्य हैं, कृष्ण ही वास्तव वस्तु हैं, कृष्ण ही निखिल वेद-प्रतिपाद्य विषय हैं, कृष्ण ही एकमात्र विषय हैं, कृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं।

— ज। दग्गुर ४५विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

# प्रश्नोत्तर

( गताङ्कसे आगे )

( ऐतिह्य )

१—इतिहास और कालज्ञान की क्या आवश्यकता है ?

“इतिहास और कालज्ञान—ये अर्थशास्त्र-विशेष हैं। युक्तिद्वारा इतिहास और कालका विचार करने से भारतका बहुत उपकार होगा। इसके द्वारा क्रमशः परमार्थ सम्बन्धमें भी बहुत कुछ उच्चतिकी आशा की जा सकती है। प्राचीन विश्वासरूपी नदी में युक्तिरूप स्रोतका संयोग करनेसे अमरूप बद्ध-शैवाल सभी दूरीभूत हो जायेंगे और कालकमसे अयशरूप दुर्गंत्वके नष्ट हो जाने पर भारतवासियों का विज्ञान स्वास्थ्य लाभ करेगा।”

—‘विजापन’, कृ. स. बा. १२८८

२—किस समय वेद ग्रन्थाकारमें संकलित हुआ ?

“प्राजापत्याधिकारमें किसी ग्रन्थकी रचना नहीं हुई थी। तब केवल कुछ सुश्राव्य शब्दोंकी सृष्टि हुई थी। सबसे पहले प्रणवकी उत्पत्ति हुई। उस समय लिखित-अक्षरकी सृष्टि नहीं हुई। एकाक्षरमें अनुस्वार-योगमात्र ही उस समयका शब्द था। मानवाधिकार आरम्भ होने पर दो अक्षरोंका संयोग कर ‘तत्सत्’ आदि शब्दोंका आविर्भाव हुआ। देवाधिकारमें क्षुद्र-क्षुद्र शब्द योजनपूर्वक प्राचीन मंत्र सभी रचित हुए। स्वयम्भुव मनुके अष्टम

पुरुषमें चाक्षुष मनु हुए। उनके समयमें मत्स्यावतार होकर भगवानने वेदका उद्धार किया था—ऐसी बात प्रसिद्ध है। जान पड़ता है, इस समयमें ही वेदके सभी छन्द और कई मंत्र रचित हुए। किन्तु वे सभी श्रुतिरूपसे कर्णसे कर्ण तक अमरण करते थे, लिखित नहीं हुए थे। इस प्रकार सभी वेद बहुत दिनों तक अलिखित अवस्थामें रहने के कारण और क्रमशः मंत्रोंकी संख्यामें वृद्धि होने के कारण अनायत्ता ( असीमता ) उपस्थित हुई। उस समय कात्यायन, आश्वनायन आदि ऋषियोंने विषय-विचारपूर्वक सभी श्रुतियोंके सूत्रोंकी रचना कर कंठस्थ करनेके लिए सहज बना दिया। उनके बाद भी कई मंत्रोंकी रचना हुई। जब वेद अत्यन्त विपुल और वृहदाकार हो गया, तब युधिष्ठिर राजा के कुच्छ काल पूर्व श्रीव्यासदेवने एकाकार वेदका विषय-विचारपूर्वक चार भागोंमें विभाग कर ग्रन्थाकारमें संकलन किया। उनके शिष्योंने यह कार्य आपसमें भाग कर लिया था। ये व्यास-शिष्य ऋषियोंने क्रमशः वेद सभीके शाखाओंका इस प्रकार से विभाग किया कि अल्प परिश्रम द्वारा ही साधारण लोग वेद अध्ययन करनेमें समर्थ हुए।”

—‘उपक्रमणिका’, कृ. स.

३—बौद्ध और जैन-धर्मका आदि इतिहास क्या है ?

“जिस समय भारतवर्षमें निरीश्वर कर्मवाद-जनित जड़ानन्द मत अत्यन्त प्रबल था, जब अप्राकृत-तत्त्व-परिपूर्ण वेद शास्त्रोंका केवल धर्मप्रतिपादक शास्त्र कहकर निरीश्वर कर्मवादको वैदिक मत कहकर जड़ावादी शाहारण लोग साधारण यज्ञादियोंके द्वारा ऐहिक इन्द्रियसुख और मरणके पश्चात् अप्सरा और आमृत-संभोग सुखका अन्वेषण कर रहे थे, तब जड़ानन्दसे असन्तुष्ट होकर क्षत्रिय-कुलोत्थूत शाक्यसिंहने एकबार शरीर-सुख की अपरिहार्यता का विचारपूर्वक निर्वाण-सुख-साधक बीढ़वादकी स्थापना की थी। इसके पहले भी किसी किसीने इस प्रकार निर्वाणवादका प्रचार किया था, इसके कई प्रमाण हैं। ×××× केवल शाक्य-सिंह ही नहीं, उनके समय या उनके कुछ पहले से वैश्यकुलोत्पन्न जिन नामक किसी पण्डितने बीढ़ मतके सट्टा और एक मतका प्रचार किया। इस मतका नाम जैन मत है। जैन मत भारतमें ही आबढ़ है। बीढ़-मत पर्वत, नदी और ममुद्रा अतिक्रम कर चीन, तिब्बत, श्याम, जापान, बर्मा, लङ्का, आदि नाना देशोंमें व्याप हुआ था।”

—त. वि.

४—पृथिवीके सभी सभ्यजातिके व्यक्ति किस समय भारतवासीको राजा, दण्डदाता और गुरुके रूपमें पूजा करते थे?

“जिस समय इस प्रकार प्रकृत संस्कार प्रचलित था, उस समय ही भारतका यशःसूर्य मध्याह्न सूर्यके तरह अत्यन्त प्रभावशाली था। सभी जातियाँ तब भारतवासियोंको राजा, दण्ड तथा, गुरु

कहकर पूजा करती थीं। मिथ्र, चीन आदि देशके व्यक्ति उस समय भारतवासियोंके निकट गौरब-बुद्धिसे उपदेश ग्रहण करते थे।”

—चै. शि. २१३

५—सबसे प्राचीन देश, सबसे प्राचीन सभ्य जाति, सबसे पुराना और सनातन धर्म क्या है? यह धर्म किस समय सर्वाङ्गसुन्दर और पूर्ण कलेवर हुआ?

“भारतवर्षकी अपेक्षा सबसे पुराना सभ्य देश नहीं है—यह सर्ववादी-सम्मत बात है। आर्य जाति की अपेक्षा पुरानी सभ्य जाति नहीं है, ऐसा पाश्चात्य व्यक्तियोंके द्वारा स्वीकार न करने पर भी सब समय ही सत्य मानना होगा। उस आर्य-जातिका प्रथमवास भारतमें हुआ था। ब्रह्माके पुत्र प्रजापतियोंके समयमें भी यह बात प्रमाणित हुई है। ब्रह्माके पुत्र कश्यप एक प्रजापति थे। उनके पौत्र प्रह्लाद हुए। उन्हें सब शास्त्रोंमें ‘वैष्णव-चूडामणि’ कहा गया है। मनुके पौत्र ध्रुवको भी वैष्णव-श्रेष्ठ कहा गया है। ब्रह्माके प्रथम सन्तान चंद्रःसन और नारद भी परम वैष्णव हैं। अतएव वैष्णवधर्मकी अपेक्षा पुरातन धर्म और नहीं है। वह वैष्णवधर्म क्रमशः स्फूर्ति लाभ करते-करते श्रीचैतन्य महाप्रभुके समय सर्वाङ्ग-सुन्दर और पूर्ण कलेवर हुआ था।”

—‘पदरत्नावली’, स. तो. २१६

६—मृतदेह—संरक्षण प्रणालीकी शिक्षा कौन ने दी थी? इस व्यवस्थाका प्रचलन क्यों हुआ?

“चान्दोग्य उपनिषदमें प्रजापतिके निकट इन्द्र और विरोचनकी तत्त्वशिक्षा-प्राप्तिकी जो घटना है, उसमें स्पष्ट देखा जाता है कि विरोचनने म्लेच्छ बुद्धिकी स्थूलताके कारण इस जड़देहको आत्मा समझकर मृत्युके पश्चात् जड़देहकी संक्षण व्यवस्था अपने अनुयायियोंको शिक्षा दी थी। जान पड़ता है, उसके मिस्त्र--देशी शिष्योंने उसी शिक्षाके आधारपर ‘मापि’ अर्थात् मृतदेह-संरक्षण-प्रथा का स्वदेशमें प्रचार किया था। उस प्रथामें थोड़ा परिवर्त्तन कर अन्यान्य म्लेच्छ देशोंमें कबर देनेकी व्यवस्था हुई है।”

—‘दर्शन-शास्त्र’, स. तो ७।१

७—किस समय दाक्षिणात्य-देशमें बुद्धिकी प्रबलता और तीक्षणता देखी जाता है ?

“सातवें शताब्दीसे दाक्षिणात्य प्रदेशमें जिस प्रकारकी बुद्धिकी प्रबलता और तीक्षणता देखी जाती है, वैसा और कहीं नहीं है। शङ्कर, शठकोप,

यामुनाचार्य, रामानुज, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य—ये सभी और कई बड़े-बड़े महान् महान् पण्डित इस समयसे भारतके दक्षिण विभागके नक्षत्र-रूपमें उदित हुए।”

—‘उपक्रमणिका’ कृ. स.

८—किस समयसे सातवत आचार्योंने वेदान्तादि चारों ग्रन्थोंके भाष्य लिखना आरम्भ किया ?

“शङ्कुराचार्यकी तरह सभी ने ही एक-एक गीता-भाष्य, वेदान्त-भाष्य, सहस्रनाम-भाष्य और उपनिषद्-भाष्य रचना की थी। तब लोगोंके मनमें यह विचार उदय हुआ कि किसी सम्प्रदायको स्थिर करनेके लिए उपरोक्त चारों ग्रन्थोंका भाष्य रहना आवश्यक है। उक्त चार वेष्णवाचार्योंसे ‘श्रीवेष्णव’ आदि चार सम्प्रदाय चले आ रहे हैं।”

—‘उपक्रमणिका’, कृ. सं.

( क्रमशः )

—जगद्गुरु अविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

— — —

## सन्दर्भ-सार

### ( श्रीकृष्ण-सन्दर्भ २१ )

दुर्योधनको जब श्रीकृष्णने विश्वरूप दिखलाया था, तब यादवोंको अपने आवरणरूपसे दिखलाया था—ऐसा महाभारतके उच्चोग-पर्वमें कहा गया है। तब जो यादवोंका मैरेय पान करनेसे बुद्धिभ्रंश हुआ था, और युद्ध करके उनके प्राणस्थाग करने की जो बात सुनी जाती है, श्री भगवत्पार्वदोंमें ऐसा

कैसे सम्भव है ? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि ये सभी पार्वद-विरुद्ध-धर्म हैं, यथार्थ नहीं हैं। श्री अर्जुनका पराजय और विमोह आदि सभी ही इन्द्रजालकी तरह माया-कल्पित घटनाएँ हैं। श्रीमन्महाप्रभुजीके श्रीवचन हैं—  
“महिषीहरण, मीषल-लीला—सब मायामय !”

ब्रह्मशाप कदापि असत्य नहीं होता, यह दिखलानेके लिए गो-ब्राह्मणोंके हितकारी भगवानने ऐसी व्यवस्था की थी। श्रीकृष्णकी आज्ञासे यादव लोगोंने पिण्डारक-तीर्थमें यज्ञानुष्ठान किया था। विश्वामित्र, अस्ति, कन्व आदि मुनि लोग जब यज्ञस्थलसे अपने-अपने आश्रमोंको जा रहे थे, तब रास्तेमें यादव-बालकोंने जाम्बवती-पुत्र साम्बको स्त्री-वेशमें सजाकर मुनियोंके निकट आकर पूछा था—‘यह यर्भवती स्त्री कौनसा संतान प्रसव करेगी, यह आप लोग बतलावें।’ मुनि लोगोंने उनके दुष्ट व्यवहारसे क्रोधित होकर कहा था—‘यह तुम्हारे कुलको नाश करनेवाले मूषलको प्रसव करेगी।’ तब बालकोंने साम्बके उदर-वस्त्रको खोलकर देखा कि वास्तवमें वहाँ एक मूषल है। वे भीत होकर उप्रसेनके निकट यह वृत्तान्त कहने लगे। तब उन्होंने उस मूषलको चूर्ण करके समुद्रमें फेंक देनेके लिए कहा। चूर्णके साथ नगण्य एक क्षुद्र लौहखण्डको समुद्रमें फेंकनेके साथ-साथ एक बड़े मत्स्यने उसे निगल लिया। इस मत्स्यके जालमें पकड़े जानेपर उसके पेदसे वह क्षुद्र लौहेका टुकड़ा निकला। जरा-ब्याधने उसे अपने तीरके नोकमें लगा लिया और चूर्ण सभी तरঙ्गोंके चंचेटों से किनारेमें लगकर एरका-घासके रूपमें उत्पन्न हुए। कुछ कालके पश्चात् श्रीकृष्णने यादवोंके साथ प्रभास-तीर्थमें गमन किया। वहाँ यादव लोग मैरेय-मधु पान कर मदमत्त हुए थे। कृष्ण-माया से मुग्ध होकर वे परस्पर कलह करने लगे और अन्तमें एरका-तृणद्वारा परस्पर एक दूसरेको आधात कर मृत्युको प्राप्त हुए।

नित्यपार्षद बादवोंकी देहत्यागादि लीला मायिक है, यह श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकमें बतलाया गया है—

राजत् परस्य तनुभृजनन्नाप्येहा  
मायाविडम्बनमवेहि पथा नटस्य ।  
स्थृतात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते  
संहृत्य चात्ममहिमोपरतः आस्ते ॥

( भा० ११।२१।११ )

परमकारण श्रीकृष्णके जो तनुभृत् थे अर्थात् देवति नारदके वचन—“प्रयुज्यमाने मयि त्वां शुद्धां भागवतीं तनुम् । प्रारब्ध-कर्मनिर्वाणं न्यपतत् पाच्च-भौतिकम् ॥” ( भ० १।६।२८ ) अर्थात् मुझमें शुद्धा भागवती तनुके संयुक्त होनेपर मेरे प्रारब्ध कर्मोंके खण्डन हो जानेके कारण मेरे पाच्चभौतिक देहका पतन हो गया—इसके अनुसार जो श्रीकृष्ण सम्बन्धिनी तनु या अप्राकृत भगवत् सेवोपयोगी देहधारी थे, उनकी जन्म-मृत्युरूपी चेष्टा केवल श्रीकृष्णकी माया-विडम्बना मात्र है। जिस प्रकार कोई इन्द्र-जालवेत्ता नट जीवित किसी प्राणीको काटकर-जलाकर फिरसे उस शरीरको जीवित कर दिखलाता है उसी तरह यहाँ भी जानना चाहिए। विश्वके रचयिता और विश्वके स्थिति-लय करनेवाले एकमात्र परम कारण श्रीकृष्णके लिए यह बात आश्चर्य नहीं है।

रावणद्वारा सीता-हरण करना भी ऐसे ही है। अर्थात् रावण माया-सीताको ही हरण करनेमें समर्थ हुआ—

सीतया राधितो वक्ति द्यायासीतामजीजनत् ।  
तां ज्हार दण्डीवः सीता बह्मपुरं गता ॥  
( वृहद् अग्निपुराण )

सीताजीद्वारा आराधित अग्निदेवने द्याया सीताको प्रकट किया । दशानन रावणने उसे ही अपहरण किया था और स्वयं सीताजी अग्निमें प्रवेश कर गयीं । रावण-बधके पश्चात् अग्नि-परीक्षाके समय स्वयं सीताजी उपस्थित हुईं ।

मौषल--लीलाका मायिकत्व श्रीकृष्णके दारुक के प्रति कहे गये वचनोंसे जाना जाता है—

त्वन्तु मद्भमंमास्थाय ज्ञाननिष्ठः उपेक्षकः ।

ममाया--रचनामेतां विजायोपशमं व्रज ॥

( भा० ११३०४६ )

अर्थात् तुम मेरे धर्ममें आस्था स्थापनपूर्वक ज्ञाननिष्ठ और उपेक्षक होकर ये सभी कार्य माया-रचित जानकर शान्ति प्राप्त करो ।

योगी लोग आग्नेयी योगधारणा द्वारा देहको जला डालते हैं । श्रीकृष्णने लोकाभिराम ध्यान धारणाके मञ्जुलस्वरूप अपने शरीरको बिना जलाये ही अपने धाममें प्रवेश किया था । आग्नेया+अदर्घवा—इस प्रकार श्रीधरस्वामीपादने अपनी ठीकामें व्याख्या की है ।

लोकाभिरामां स्वतन्त्रुं धारणाध्यानमंगलम् ।  
योगधारणायाग्नेया दर्घवा धामाविशत् स्वकम् ॥

( भा० ११३१६ )

श्रीकृष्णके प्रपञ्चत्याग करते समय देवता लोग

वहाँ उपस्थित थे, ऐसा श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

सोदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।  
गतिनं लक्ष्यते मत्येस्तथा कृष्णस्य देवतैः ॥

( भा० ११३१६ )

जिस प्रकार आकाशमें विजली चमककर जन-साधारणकी हृषिसे अगोचर हो जाती है, उसे कोई भी देख नहीं पाता, श्रीकृष्ण भी उसी प्रकार आकाश मार्गमें उठकर कहाँ अन्तर्छनि हो गये, यह ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सके ।

अप्राकृत-शरीरधारी यादवोंकी देहत्यागादि बातें असम्भव ही हैं । जो श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपालित हैं, उनका भी देहनाश असम्भव है । इस इलोकसे यह स्पष्ट है—

मत्येन यो गुरुमुतं यमलोकनीतं  
त्वां चात्यच्छ्ररणदः परमास्त्रदग्धम् ।

जिव्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः  
कि स्वावने स्वरनयन्मृगयुः सदेहम् ॥

( भा० ११३११२ )

उन्होंने यमलोकगत गुरुपुत्रको, पञ्चजन द्वारा भक्षित शरीरको, ठीक उसी नरदेहमें लाये थे और है परीक्षित ! श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्र द्वारा दग्ध तुम्हारे शरीरकी रक्षा थी । अतएव यहाँ ऐसा कोई कहें कि श्रीकृष्णके लिए सब कुछ सम्भव है, किन्तु ब्रह्मशाप ग्रस्त यदुकुलकी रक्षा करना उनके लिए असम्भव

है, इस आशंकाको दूर करनेके लिए परीक्षितका उदाहरण है, जहाँ यह देखा गया कि श्रीकृष्णके ऊपर ब्रह्मतेज भी प्रभाव विस्तार करनेमें असमर्थ रहा। अधिक क्या, उन्होंने मृत्युञ्जय ( यमके यम ) महादेवको भी पराजित किया था, और जरा नामक व्याघ उनपर अस्त्राधात कर अनुताप करने पर श्रीकृष्णने उसे सशरीर बैकुण्ठ भेजा था। वे क्या अपनी या अपने निजजन यादवोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ?

यहाँ यह प्रश्न है कि यादव लोग सशरीर अपने धाममें गमन करें, किन्तु उनके अन्तर्द्वानिके पश्चात् श्रीकृष्ण कुछ समयके लिए मत्पंचलोकमें क्यों नहीं रहे ? उत्तर यही है कि यादवोंके साथ श्रीकृष्णका प्रचुर और नित्य प्रेम और स्नेह होनेके कारण वे उनमेंसे किसीको छोड़कर रह नहीं सकते। इसलिए भागवतमें कहा गया है—

तथा प्यशेषस्थितिसम्भवाप्येऽ—

इवन्यहेतुर्यदशेषशक्तिवृक् ।

नच्छत् प्रणातुं वपुरत्र शेषितं

मत्येन कि स्वस्थगति प्रदशंयन् ॥

( भा० ११।३।१३ )

यद्यपि अशेषशक्तिधारी श्रीकृष्ण अनन्त ब्रह्माण्ड के सृष्टि-स्थिति-लयके एकमात्र हेतु हैं, तथापि निजाश्रित व्यक्तियोंकी गतिका दिखलानेके लिए अपना शरीर भी इस जगतमें रखनेकी इच्छा नहीं की थी ! क्योंकि यादवोंके बिना मत्य व्यक्तियोंसे उनका क्या प्रयोजन है ? अतएव यादवोंके निधनादि

मायिक लीलाएँ होनेके कारण यादवोंका भी भगवान की तरह अन्तर्द्वानि ही सम्भवपर है। दूसरे साधारण मत्यंशील व्यक्तियोंकी तरह उनके मरण की सम्भावना नहीं है।

इस सम्बन्धमें श्रीउद्गुवजी कहते हैं—

मिथो यदेषां भविता विवादो

मध्वामदातान्नविलोचनानाम् ।

नेषां वधोपाय इयानतौऽन्या

मत्युच्यतेऽन्तदर्द्धते स्वयं स्म ॥

( भा० ३।३।१५ )

मधुपानमें मत्त यादवोंका परस्पर विवाद उनका वधोपाय नहीं है। यादवोंका पृथिवी-परित्यागके सम्बन्धमें श्रीकृष्णका मत—इन यादवोंका यदि परस्पर विवाद हो, उसके द्वारा भी इनके पृथिवी-परित्यागकी बात वधोपाय न होगी। यदि ये मेरी इच्छासे स्वयं अन्तर्द्वानि होवें, तब कही इनका पृथिवी त्याग करना सम्भव है।

पांडियोंकी भगवदिच्छासे जन्मादि होती है, यह बात विदुरने कहा था—

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय

कर्मण्यकर्त्तुं प्रहणाय पृसाम् ।

नन्वन्यथा कोऽर्हति देवयोगं

परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥

( भा० ३।१।४४ )

अर्थात् प्राकृत जन्मरहित श्रीकृष्णका आविर्भावरूप जन्म दुष्ट व्यक्तियोंके विनाशके लिए

होता है और सत्त्वादि गुणहेतुयुक्त-कर्तृत्वरहित भगवानका केवल लोक-कल्याणके लिए ही जन्म होता है। नहीं तो गुणातीत कोई व्यक्ति देह धारण करनेके लिए और कर्म-विस्तार करनेके लिए कैसे योग्य हो सकता है? इसके द्वारा यही बात स्पष्ट

जाना जाता है कि श्रीभगवानके प्राकृत जन्म-कर्म इत्यादि नहीं हैं, और उनके पार्षदोंके भी वैसे जन्म-कर्म आदि नहीं हैं।

—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

## शीघ्र ही संग्रह करें

[ सोलह पेजी २० × ३० आकार के ८०० पृष्ठोंकी सजिस्तद पुस्तक। भिक्षा—केवल दस रुपये ]

जैवधर्म हिन्दी भाषामें वैष्णवधर्मके विशेषतः श्रीगौड़ीय वैष्णवधर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें अखिल विद्वके निखिल जीवोंके सावंत्रिक, सावंकालिक तथा सावंजनिक नित्य सनातन धर्म—जैवधर्मका हृदयप्राही साङ्घोपाङ्घ वर्णन है। इसमें वेद, उपनिषद्, वेदान्त, श्रीमद्भागवत् आदि पुराणों, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, पंचरात्र और गौड़ीय गोस्वामियोंके ग्रन्थों का सार सहज—सरल और रुचिकर भाषामें उच्चन्यास प्रणालीसे गागरमें सागरकी भाँति भरा है।

उच्चकोटिके विद्वानोंने भी अनुवादको मूल ग्रन्थके समान ही भावपूर्ण और स्वाभाविक माना है।

अतः पाठकों से विशेष अनुरोध है कि इस ग्रन्थ-रत्न का संग्रह कर अवश्य अध्ययन करें।

मँगाने का पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

जैवधर्म ( हिन्दी-संस्करण )

मूल लेखक—जगदगुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

# श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

( गताङ्कसे आगे )

महो विधातस्तव न क्वचिद् दया  
संयोज्य मेत्या प्रणयेन देहिनः ।  
तांश्चाकृताथन् वियुनंश्यपार्थकं  
विकीडितं तेऽर्भक्तेष्टितं यथा ॥  
यस्त्वं प्रश्यासित कुन्तलावृतं  
मुकुन्दवक्रं सुकपोलमुञ्जसम् ।  
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं  
करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥  
कूरस्त्वमकूरसमाख्यया स्म न—  
इचक्षुहि दत्तं हरसे बताज्जवत् ।  
येनैकदेशोऽखिलसर्गं सोष्ठवं  
त्वदीय मद्राक्षम वयं मधुद्विषः ॥  
न नन्दसूनुः क्षणभंगसौहृदः  
समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ।  
विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पती—  
स्तदास्बमद्वोपगता नवप्रियः ॥  
सुखं प्रभात रजनीयमाश्रिष्यः  
सत्या बभूवुः पुरयोषितां श्रूतम् ।  
यः संप्रविष्टस्य मुख ब्रजस्पते:  
पास्यन्त्यपाञ्जोत्कलितस्मितासवम् ॥  
( भा. १०।३६।१६, २०, २१, २२, २३ )

गोपियाँ कहने लगीं—हे विधाता ! तू बड़ा ही निष्ठुर है । तुममें ओड़ी भी दया नहीं है । देहधारियोंको पहले प्रेमकी डोरमें बाँध कर उनकी इच्छा पूरी होनेके पूर्व ही उनका परस्पर वियोग करा देते हो । बालकोंके खेलकी तरह तेरे कार्य सभी मूर्खतापूर्ण हैं ।

तुमने पहले काली-काली अलकोंसे आवृत, सुन्दर नासिका और कपोलोंसे सुशोभित तथा शोक को दूर करनेवाली मन्द मुसकानयुक्त मनोहर मुकुन्द के मुखारविन्दका दर्शन कराकर जब आँखों से दूर हटा रहे हो, यह अत्यन्त अनुचित है । यह तो तेरा अत्यन्त निन्दनीय कर्म है ।

अरे कूर-विधाता ! तू ही अकूर नाम घर कर, उन कृष्णाको, जिनके प्रत्येक अङ्गोंमें एक ही स्थानपर तेरी सम्पूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता सुशोभित होती है, अपने द्वारा दिए हुए नेत्रोंको छीननेकी तरह हरण करने आये हो !

श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारी समझमें ऐसे निष्ठुर नहीं हैं जो हमारे स्नेहको क्षणभरमें भूला दें । वे हमें अपने लिए व्याकुल होते न देख सकेंगे । हमने तो उनके मन्द हास्यसे मोहित होकर उनकी सेवा के लिए घर-वार, माता-पिता, पति-पुत्र, बन्धु-भाई, परिवारादिको ल्याग दिया है । क्या वे अब

हमारी ओर न निहारेंगे ? प्यारे कृष्णको नित्य नई-नई बरतुएँ प्यारी लगती हैं। इसलिए समझते हैं कि वे हमको छोड़ जायें ।

दूसरी कोई गोपी ईर्ष्यापूर्वक कहने लगी—  
आज निश्चय ही मथुराको खियों के लिए सुप्रभात होगा । अब उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी । क्योंकि नन्दनन्दनके मथुरापुरीमें प्रवेश करते ही वे अपने कटाक्षकी कोरोंके द्वारा उनकी सुधामयी मुग्कानको नेत्रोंके द्वारा जी भरकर पीयेंगी । वे पुर नारियाँ मधुर वाक्योंसे उनके हृदय को हर लेंगी, और वे उनके लज्जा-मुस्कानसे सुलिलित हावभावों में फैस जायेंगे । तब पराधीन होकर वे धीर होने पर भी हम गाँवोंकी मूर्ख नारियोंके निकट क्यों लौट कर आने लगे ?

आज दशाहं, भोज, अन्धक, कुच्छुर और वृष्णि वंशज यादवोंके नेत्रोंको परमानन्दकी प्राप्ति होगी । क्योंकि वे मार्गमें चलते हुए नीपति, गुणोंके आगार देवकी-पुत्र कृष्णको निहारेंगे । अरी सखी ! इस करुणाहीनका नाम तो अक्सर नहीं होना चाहिए । यह तो बड़ा दारुण है, क्योंकि दुखित जनोंको बिना आश्वास दिए ही हमसे प्राणोंसे प्यारे श्री कृष्णको इतनी दूर ले जानेको उच्चत है ।

पापाणसे भी कठोर हृदययुक्त अक्सर रथपर चढ़ रहा है, साथ ही वे दुष्ट गोप भी अपने-अपने छुकड़े जोत जोतकर तैयार हो रहे हैं । चलनेके लिए शीघ्रता कर रहे हैं । अरे ! वृद्ध लोग भी इनको जानेसे नहीं रोकते ! दैव भी इस समय हमारे प्रतिकूल है, ऐसा जान पड़ता है । नहीं तो

दैवके अनुकूल होनेसे अवश्य ही इनमेंसे कोई एक मृत्युका ग्रास बन जाता, या बजपात होता, या कोई विघ्न अवश्य हो जाता ।

निवारयामः समुपेत्य माधवं

कि नोऽकारण्यन् कुलवृद्ध वांधवाः ।

मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्

दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-

लीलावलोक परिरम्भणा रामगोष्ठ्याम् ।

नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणादा बिना तं

गोप्यः कथं वितिरेम तमो दुर्गतम् ॥

(भा. १०।३३।२८, २६)

अरी सखी ! चलो, सभी मिलकर कृष्णको जाने न दें । कुलके बड़े बूढ़े हमारा क्या कर लेंगे ? हम आधे पलके लिए भी कृष्णका साथ नहीं छोड़ सकतों । दुर्वचवश आज उन्हींसे हमारा वियोग हो रहा है । हमारा पिता अत्यन्त दुःखी है; जब हम मृत्युसे भी नहीं डरतीं, तब बड़े बूढ़ोंका क्या डर है ?

रासमें जिनकी सानुराग मनोहर बातचीत, लीला, लवित कटाक्ष-विक्षेप, और आलिङ्गनमें उतनी बड़ी रातें भी क्षणके रूपमें बीत गईं और कुछ भी नहीं ज्ञान रहा । उन कृष्णके बिना हे गोपियों ! हम इस अपार विरह दुःखको कैसे सहन करेंगी ?

संध्याके समय गौओंके खुरोंसे उड़ती हुई धूलों से भरी अलकावली और मालाओंसे सुशोभित जो

कृष्णचन्द्र गोपगणोंके साथ बंशी बजाते और हास्य से मनोहर कटाक्ष वाली दृष्टिके द्वारा सुधावृष्टि करते हुए व्रजमें प्रवेश करके हमारे चित्तको चुराते हैं, उनके बिना हम कैसे जीवित रह सकती हैं ? अतः साहस करके रोकना ही उचित है ।

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो  
गोपेविशन् खुररजश्छुरितालकम्बक्  
वणुं व्यग्नान् स्मितकटाक्षनिरोक्षणेत  
चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥  
(भा. १०।३६।३०)

ऐसी कहती हुईं गोपियाँ आगे बढ़ीं । जिनका चित्त मुकुन्दमें ही पूर्णरूपसे आसक्त है, वे कैसे रह सकेंगी ? वे विरहके दुःखसे अत्यन्त कातर होकर, लोक-लज्जाका त्याग कर बड़े ही ऊँचे और करुण स्वरसे पुकार पुकार कर क्रन्दन करतीं हुईं 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' ऐसा कह कर विलाप करने लगीं ।

गोपियोंके विलाप करते-करते और उनके देखते-देखते उनके प्यारे मोहनको लिए रथ और गोपोंके गोरस आदिसे पूर्ण शक्ट भी चल पड़े । वे श्रीकृष्णके चितवनकी प्रत्याशासे आश्वासित होकर खड़ी-खड़ी यह सोचती रहीं कि हमें भी

ब्रजेन्द्रनन्दनका कृपाभरा कोई सन्देश मिलेगा । गोपियोंके दुःख-वारिधिमें कृष्ण भी कुछ समय तक अवगाहन करते रहे । अन्तमें उन्होंने कहला भेजा कि तुम लोग दुःखी मत होना । मैं शीघ्र ही आऊँगा । श्रीकृष्णके इन प्रेमपूर्ण वाक्योंसे गोपियों को खोड़ा बहुत धैर्य हुआ ।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणुरथस्य च ।  
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिता ॥

(भा. १०।३६।३२)

श्रीकृष्णके साथ ही जिनका आत्मा चला गया है, ऐसी वे गोपियाँ जब तक रथ की छवि और पहिओंसे उड़ी हुई धूली दीख पड़ीं, तब तक उसी स्थान पर एकटक दृष्टिसे देखती रह गयीं । वे ऐसी दीख पड़तीं थीं मानो चित्रमें लिखित पुतलियाँ खड़ी हों ।

जब उन्हें श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा नहीं रही, तब वे अपने-अपने घरोंको लौट गईं । वे अपने प्रियतमके प्रिय चरित्रोंको गा-गाकर शोकको शान्त करतीं हुईं विरहका समय बिताने लगीं ।  
(क्रमशः )

—वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री,  
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ ।

# श्रीकृष्ण

## ( गोप-गरलोद्धरण )

सृष्टि का काल हुआ आरम्भ,  
विवृधि-पति रचना का सुविधान ।  
क्रमिक विकसित उन्मुक्त तभी,  
ऋषि थे कश्यप जठर महान ॥१॥

ज्ञान रत रहते रजनि दिवा,  
तदापि एकादश-वाम-विहार ।  
किया करते, रहते विचि वारि,  
पत्र नीरज का ज्यों सुकुमार ॥२॥

कद्रु विनिता थीं नारि ललाम,  
प्रथम का वासुकि नाग महान ।  
द्वितीय के आत्मज हुआ प्रभूत,  
गरुड गुण-गौरव मय द्युतिमान ॥३॥

तपन-तप से तापित बेनतेय,  
सबल केवल बल थे धनश्याम ।  
बढ़ा उनमें सापत्न्य विभाव,  
सन्तति तक भी रहा प्रकाम ॥४॥

उड्यन-शक्ति थीं परिपूर्ण,  
कहाये जिससे वे खग राज ।  
बसे थे कद्रु के सुत जाय,  
द्वीप रमणीक मनो अधिराज ॥५॥

मध्यपाताल लोक में यही,  
सुहाता सर विच यथा सरोज ।  
स्वार्थ हित संरक्षण मिस सभी,  
गरुड को अर्पण करते रोज ॥६॥

विवश बेचारे अक्षुशुब्दा,  
दिया करते उसको बलिदान ।  
तृप्त होता कर भक्षण उन्हें,  
यही था उसका नित्य विधान ॥७॥

कालि नामक या तरुण उरग,  
पड़ी पारी थी जिसकी हंत ।  
विवश हो लगा सोचने व्याल—  
आज होगा मेरा इमि अन्त ॥८॥

करेंगी क्या बेचारी पत्नि,  
विवश से होकर व्यथित विहाल ।  
हाय मैं विधना निरपराध,  
काल-मुख पड़ा आज विकराल ॥९॥

कमल की कलिका कोमल कान्त,  
विरह-कुहरा-नगत या गत लाज ।  
अरे ! योवन का पूर्ण वसन्त,  
खिला है उनके तन-तरुराज ॥१०॥

नेह-मय-मानस मंजुल दीप,  
बुझेगा योवन-रजनि-यकाल ।  
कराहतीं रह जावेंगी प्रभो,  
अनाथ हो यारी कामिनि बाल ॥११॥

भूमि पर पटक-पटक कर शीश,  
करेंगी त्याग अपने प्राण ।  
बिना मुझ नाविक के मझधार,  
करें को जीवन-नैया-त्राण ॥१२॥

नहीं मैं नहीं सहूँगा बार,  
बारका लूँगा में प्रतिशोध ।  
सहज में मृत्यु के मुख कौन,  
निजासुव डालेगा अविरोध ॥१३॥

कहाता है अधर्म, अन्याय,  
बैठ रहना यों निरूपाय ।  
बारुण का भीषण-प्रवल-प्रहार,  
सहूँगा कबतक मैं अन्याय ॥१४॥

करूँगा मद-मदन-खगराज,  
विष्णु-बल से वह हो निशंक ।  
बना है गर्वला बलबान,  
बन्धु मम डाले मृत्यु अंक ॥१५॥

रजनि में प्राण प्रिया से जाय,  
कही लड़ने की उसने बात ।  
सुना ज्यों हीं यह प्रस्ताव,  
हुए थोड़े कम्पित उनके गात ॥१६॥

नाथ, जनि दुस्साहस को धारि,  
रचो मत उससे भीषण युद्ध ।  
वासुकि, शंखचूड़ मय अष्ट,  
व्याल विह्वल हों जब ही कुद्ध ॥१७॥

हजारों का उसने तन मर्दि,  
हजारों दिये ईख सम तोड़ ।

अनेकों एक ग्राम में डाल,  
मध्य मुख दिये प्राण मरोड़ ॥१८॥

कर जोड़ करें हम विनय यही,  
त्याग दें धरणी रमणीक द्वीप ।  
बसें जा अनत भूप की शरण,  
सरस सुखप्रद जम्बू द्वीप ॥१९॥

धारण किया नर रूप उसने कंस छिंग तिय सह गया ।  
आरक्ष करने आया अपने शरण में मानों गया ॥

सब वृत्त निजं का कह सुनाया कंसने तब यों कहा ।  
'निर्बाध गति है विष्णु-वाहन-शक्तिशाली भी महा ॥

फिर मौन हो सोचा नृपति ने, कामका यह नाम है ।  
ब्रजवासियों के हेतु यह ठण्डी सुलगती आग है ॥

होकर तनिक गम्भीर नृप बोले अहो कद्रू-तनय ।  
सीभरि ऋषिके शाप-वश हृद है बना यमुना निलय ।

राज्य में मेरे रहो निशंक होकर सह प्रिया ।  
कर न सकेगा नीच वह अब लों वहीं उसने किया ॥

विनता प्रियात्मज भूलकर उस ठीर नहीं जायगा ।  
यदि जायगा तो तन उसी का भस्मवत हो जायगा ।

और देख लो उस निलय में कर प्रबल निज हिय ॥

ना तनिक क्षति भी पहुँचने पावें सहसदल कमलको  
वृन्दा-विपिन-तट-वाहिनी मार्त्तण्ड तनया नीर में ।

बस गये सह-पत्नी कद्रू-तनय हृद गम्भीर में ॥



## “यदाहन्तैमिलितः”

( ले० इनमाली भरद्वाज दद्दन् चार्य-भू. पू. मूलिष्प । कमिशनर-मधुरा )

सकलमहीमण्डलमण्डनमहिम  
महनीय यशस्त्रिनी, मानवमनोमन्यायष्टिरित मथुरी  
नगरी । योऽज्ञापि गौडीय सम्प्रदायस्य महानुभावा-  
नामानुवानामचंनीयपादपद्म्योर्युग्लयुवक्योर्बि -  
हारस्थली वर्तते । एवम्भूतायां ब्रजवसुन्धरायां  
भगतसिंहोद्यानस्य समक्षे एकोऽस्ति गौडीयो मठः ।  
तत्र च तस्य प्रधानाधिकारी श्रीत्रिदण्डस्वामी श्रीमद्  
भक्ति वेदान्त नारायण महाराजाः भागवत मासिक  
पत्रिकायाः सम्पादकाः महोदयाः ।

यस्य बाह्यवातावरणे यद्यपि जवाहर हृष्य  
महान् जन सम्मदोऽस्ति । सेवरम्भाद्वीजमुहूर-  
फलादीनां विक्रेत्रीनां वर्कशरटनेन, ‘अपसरत  
भ्रातरः’ इत्यादि-रिक्सा-चालकानां कोलाहले न च  
कर्णं कुहरपूरणं सज्जायते तथापि मठाभ्यन्तरे तपो-  
वनमिव शान्तेरेकच्छ्रवं साम्राज्यम् ।

[ सारांश—मथुरा नगरी आज भी गौडीय  
सम्प्रदायके महानुभाव आचार्योंके ग्रन्चनीय पादपद्म  
युग्ल-युवककी विहारस्थली है । ऐसी इस ब्रज  
वसुन्धरायें भगतसिंह पार्कके सामने एक गौडीय  
मठ है जिसके प्रधानाधिकारी श्रीत्रिदण्डस्वामी  
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, सम्पादक—  
भागवत मासिक पत्रिका है ।

मठके बाह्य वातावरणमें जवाहरहाटकी भीड़-  
भाड़ तथा ग्रनेकों प्रकारके कोलाहल मुनाई पड़ते

हैं, किन्तु मठके अन्दर तपोवनके समान शान्तिका  
एकच्छ्रव साम्राज्य है ]

अस्तु एकस्मिन्दिवसे यदाहं श्रीत्रिदण्डस्वा-  
मिभिः सहवार्तालापाय तत्र गतस्तदा तेषां पुस्तका-  
लयेऽहं सीमाग्नेनैव प्राप्तव्यं तत्साक्षात्कारमलभम् ।  
विशतिः वर्षाणि व्यतीतानि यद्यपि प्रारम्भिक षट्सु  
वर्षेषु यातायातमनेकश अनुत्, परन्तु इतो द्वादश-  
वर्षेभ्यः तेऽत्रस्थायिनिवासिनः मया प्रार्थितास्ते  
एवम्मम प्रश्नानुदत्तरन् ।

प्रश्नः—भवताम्मादरणीयाः गुरुयः ?

उत्तरम्—ॐ श्री विष्णुपाद श्री श्रील भक्ति  
प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजाः ।

सांश—अस्तु एक दिन जब मैं स्वामीजीके  
साथ भेंट वात्तके लिये गया, तब उनके पुस्तकालय  
में मैं सीमाग्न्यसे ही प्राप्य इनके साक्षात्कारको  
पाकर धन्य हुआ । बीस वर्ष हुए; यद्यपि प्रारम्भिक  
द्यः वर्षोंमें उनका अनेकों बार यातायात हुआ परन्तु  
इधर बारह वर्षसे वे यहाँ के स्थायी निवासी हैं ।  
मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें उन्होंने अपने श्रीगुरुचरणका  
नाम “ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्ति प्रज्ञान केशव  
गोस्वामी महाराजजी” बताया ।

यदा इहमनुभवम् यदास्मित्यत्तित्वे स्वकीय  
साम्प्रदायिक तथानां तर्कपूरणायामपि  
सामंजस्यमय्याम्-शेन्यांसभावानस्य संपूर्णक्षमतास्ति

तदाहुं तं शैव-वैष्णव सम्प्रदायानपृच्छम् । तैर्ग-  
पिऽकृपणावाग्धारा प्रपातैर्मम श्रवणपिपासोरसा-  
न्त्वतायैवं पथर्लिंचितम् ।

ये जनाः परमेश्वरं वेदांश्च मन्यन्ते ते यास्तिकाः।  
न मन्यन्ते ते नास्तिकाः। ये ईश्वरं श्रुति वान्यतमं  
मन्यन्ते तेऽधं नास्तिकाः। यथा निरीश्वर सांख्याः।  
शङ्करभगवत्पादानां विषये ते सत्तम्, यत्तेषां लक्ष्यं  
मोक्षोऽस्ति तदेव बौद्धानामपि निर्वाणोऽस्ति । अतो-  
ऽस्मिन्केन्द्रविन्दी शङ्कर बौद्धयोः साम्यम् । परन्तु  
केवलमभेददर्शनम्, अवैदिकमपि तात्कालिकौचित्य-  
पूरणार्थमेव साधु ।

“शङ्करः शङ्कुरः साक्षात्” इत्यनुमारेण  
शङ्करेणाऽभेदस्यसाभित्तिर्निर्मिता यस्यां भगवन्निम्बा-  
दित्यचरणः चिन्त्यभेदाभेदस्य, श्रीरामानुजाचा-  
र्येश्च विशिष्टाद्वंतस्य, श्रीमध्वाचार्येश्च शुद्धद्वंतस्य,  
भगवच्चैतन्य-महाप्रभुपादेश्चाचिन्त्यभेदाभेदस्यचित्र-  
रचना कृतास्ति । श्रीचैतन्य मतानुमारेण जीवः  
शक्तिरस्ति, ब्रह्मशक्तिमांश्चास्ति । शक्तिशक्तिमतो-  
भेदोऽप्यस्ति, अभेदोऽप्यस्ति । अयं भेदोऽपि वर्तते,  
अभेदोऽपिवर्तते कथमित्यम्भवति । अचिन्तनीयमेतत् ।  
चिन्तनाधारभूतानामन्तः करणानामतीतविषय-  
त्वात्, अबोध्यमनहङ्कार्यम्, अमननीयम् अतएवा-  
चिन्त्यमिति ।

सारांश—जब मैंने अनुभव किया कि इन  
व्यक्तित्वमें अपनी साम्प्रदायिक तथ्योंकी तर्कपूर्ण  
शैलीमें भी सामाजिकमयी शैलीके पुटको देकर  
समाधान करनेकी पूर्ण क्षमता है, तब मैंने उनसे  
शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदायोंके सम्बन्धमें भी पूछा ।  
उन्होंने अपनी कृपणतारहित वार्णीकी धाराके  
भरनोंसे मेरी श्रवणकी प्यास बुझानेके लिये इस  
प्रकार पर्यालीचन किया ।

जो जन परमेश्वर और वेदोंको मानते हैं, वे  
आस्तिक हैं, न मानने वाले नास्तिक हैं । जो ईश्वर  
और श्रुति इनमेंसे किसी एकको मानते हैं, वे अधं-

नास्तिक हैं । जैसे निरीश्वर सांख्य आदि । शङ्कर-  
भगवत्पादके सम्बन्धमें उन्होंने कहा कि उनका लक्ष्य  
मोक्ष है, बौद्धोंका निर्वाण है । परन्तु उनके द्वारा  
निदिष्ट परिभाषाओं एवं विचारोंसे श्रीशंकराचार्य  
की मृत्ति और बौद्धोंका निर्वाण, तथा शङ्करका  
निविशेष ब्रह्म और बौद्धोंका शून्य एक ही बात है ।  
इनमें केवल शब्दोंका ही अन्तर है । इसलिये उस  
केन्द्रविन्दु-पर शङ्कर और बौद्धमतोंकी समता  
है । परन्तु केवल-अभेद-दर्शन अवैदिक होते हुए भी  
तात्कालिक श्रीचित्यकी पूतिके लिये उचित ही  
या । उन्होंने शङ्करको साक्षात् शङ्कर बताया  
उनके निर्मित अभेदकी भित्ति पर भगवान  
निम्बादित्यने चिन्त्यभेदाभेद और श्रीरामानुजाचा-  
र्येने विशिष्टाद्वंत, श्रीमध्वने शुद्धद्वंत और भग-  
वात् चैतन्य महाप्रभुने अचिन्त्यभेदाभेदकी चित्र-  
रचना की है ।

श्रीचैतन्यके मतानुसार जीवशक्ति है, ब्रह्मशक्ति  
मान है । इनमें भेद भी है, अभेद भी है । ऐसा क्यों  
है - यह अचिन्त्यनीय है क्योंकि चिन्तनके आधार-  
भूत प्राकृत अन्तः करणोंके लिये, यह अगम्य विषय  
है । यह प्राकृत बुद्धिसे अबोध्य, प्राकृत अहंकारसे  
अनहङ्कार्य और प्राकृत मनसे अमननीय है । अत-  
एव अचिन्त्य है ।

यद्याप्येताऽन्मात्रेण स्ववचनामृतप्रदानेन तेषां  
काचिदपि स्तोकमपि, खिञ्चातावोद्दिग्नता न प्रतीता  
भवत, परन्तु ममापि कानिचिदन्यानिकर्तव्यान्या-  
सन् । भाग्येनैव प्राय इत्यम्भूतानां महात्मनां  
वसुधायां सुधायां मिवामरत्व साक्षात्कारोऽनुभूयते ।  
अस्तु आमन्त्र्य नमस्कृत्यचाहं गन्तय कृप्यगच्छम् ।

सारांश—इतने सुवचनामृत - प्रदानसे  
न उनको ही किञ्चित्मात्र भी खिञ्चता या उद्दिग्नता  
प्रतीत हुई न मुझे ही भाग्यसे प्रायः ऐसे महा-  
त्माओंका पृथ्वीपर अमृतके समान अमरत्वपूर्ण  
साक्षात्कार अनुभवमें आता है ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीश्रीगुह-गौराज्ञी जयतः

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,

पो—नवद्वीप ( नदिया )

१ जनवरी १९६८

## श्रीव्यास-पूजाका निमन्त्रण

नारायणं नमस्त्य नरञ्ज्ञे व नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रम-गुरुसज्जाराध्य-वेदान्तविद्याश्रितेषु—

आगामी ४ फालगुन, १७ फरवरी ( माघी कृष्णा तृतीया ) से ६ फालगुन, १६ फरवरी ६८ ई० (माघी कृष्णा पंचमी) तक व्यासाभिन्न जगद्गुरु अंगिष्ठगुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिमिद्वान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' ( माघी कृष्णा पंचमी ) एवं उनके अन्तर्गत प्रिय पाषंदवर परिव्राजकाचार्यवर्य अंगिष्ठगुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज ( माघी-कृष्णा-तृतीया ) की आविभव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ा ( ५० बंग ) में तीन दिन श्रीश्रीव्यासपूजा और तदज्ञीभूत पूजा-पञ्चक अर्थात् श्रीकृष्ण-पञ्चक, व्यास-पञ्चक, मध्वादि आचार्य-पञ्चक, सनकादि-पञ्चक, श्रीगुरुपञ्चक और तत्त्वपञ्चककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे । प्रति दिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जनिप्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अज्ञ होंगे ।

धर्म-प्राण मज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बान्धवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे । इस महदनुष्ठानमें योगदान करनेमें असमर्थ होने पर प्राण, अर्थ, वृद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी ।

व्यासव्यानुगत्याभिलाषी—

सम्यक्षुद्द

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्वृष्टिय—वृहस्पतिवारको श्रीपूजा-पञ्चकादि, श्रील आचार्यदेवके श्रीपादपद्मोंमें पूष्पजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्रात् प्रवन्ध पाठ, भाषण । शुक्रवारको श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें प्रवचन । शनिवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अंजलि-प्रदान, प्रवन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना ।